लेख

मजसिल की साथियों के साथ फ्लेविया (बीच में)

सहनशीलता की मूर्ति बने रहना धर्म नहीं है
-फ्लेविया एग्नेस

दिव्या जैन

फ्लेविया एग्नेस, एक ऐसी नारीवादी और साहसी वकील का नाम है जिसने 1990 में चार-पांच अन्य स्त्रियों के साथ मिलकर *मजलिस मंच* की स्थापना की थी। इस मंज़िल तक पहुंचने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा था। मैट्रिक पास होते ही विवाह के लिए प्रस्ताव आने लगे। पहला ही लड़का पसंद आ गया और 1967 में दोनों शादी के बंधन में बंध गये। लेकिन तेरह साल के विवाहित जीवन में घरेलू हिंसा, मार-पीट व तकलीफ़ ही मिली। उनके जीवन के इन्हीं अनुभवों ने उन्हें परिपक्वता प्रदान की है और आज वे *मजलिस मंच* की सक्रिय वकील के तौर पर फैमिली कोर्ट तथा हाईकोर्ट में स्त्रियों को उनके खोये हुए अधिकारों को वापस दिलवाने के लिए लड़ाई लड़ रही हैं।

तेरह साल की जंग के बाद इस मुकाम पर पहुंचकर जीवन में आपने क्या पाया है? इस प्रश्न के उत्तर में

फ्लेविया बताती हैं, 'अगर भौतिक सुख-सुविधाओं की बात करुं, तो ज़िंदगी ने मुझे कुछ नहीं दिया है, लेकिन 'स्वतंत्रता' नामक एक छोटा सा शब्द, मेरे शब्दकोश में प्रथम स्थान पर है। अलबत्ता, जिस व्यक्ति को जीवन में कभी भी शारीरिक हिंसा का अनुभव न हुआ हो, जिसे आवश्यक चीज़ों के लिए गिड़गिड़ाना न पड़ा हो, जिसे अमानवीय बर्ताव का अनुभव न हुआ हो और जिन्हें अपमान के घूंट न पीने पड़े हों उसे मेरी बात समझ में नहीं आयेगी। आज मैं स्वतंत्र हूं, यानी जिस घर में मैं रहती हूं वहां से कोई मुझे आधी रात को भूखा-प्यासा, रोता-बिलखता बाहर नहीं निकाल सकता।

अब मुझे कोई नौकरी या मेरी पंसद का काम करने से रोक नहीं सकता। ऑफिस से वापस घर लौटने पर अब मुझे डर नहीं लगता है। अब रास्ते में कोई फ्लेविया कहकर आवाज़ लगाये तो मैं घबराती नहीं हूं। अब मैं पूर्ण रूप से फ्लेविया हूं। केवल किसी की मां, पत्नी या बेटी नहीं।'

फ्लेविया का बचपन मंगलोर में बीता। 'मंगलोर में मेरी एक अविवाहित मौसी रहती थीं। मेरे माता-पिता और बहनें तो अफ्रीका में रहती थीं। मौसी का घर छोटा, लेकिन सुंदर था। मैं कन्नड़ माध्यम के स्कूल में पढ़ने जाती थी। मौसी के यहां मैं बहुत प्यार-दुलार से बड़ी हुई। मैंने जब एस.एस.सी. की परीक्षा दी तब मौसी बीमार हो गई और उनकी मृत्यु हो गई। छह महीने के बाद मेरे पिताजी की भी मृत्यु हो गई। मुझे अफ्रीका जाना पड़ा। वहां एक ऑफ़िस में टाईपिस्ट की नौकरी मिल गई।

पिताजी की मृत्यु के बाद आगे पढ़ना तो संभव ही नहीं था। जीवन में कुछ हद तक स्थिरता आयी थी लेकिन दुर्भाग्य से अफ्रीका में भी उस वक्त कुछ संघर्ष शुरू हुआ और हम सभी को भारत वापस आना पड़ा।

कोई भी लड़की जब बड़ी होती है तो आमतौर पर माता-पिता उसकी शादी करके एक ज़िम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं। हम पांच बहनें व एक भाई थे, लेकिन भाई हमारे साथ नहीं रहता था। पिता की मृत्यु के बाद हमारी शादी करवाने की ज़िम्मेदारी अकेली मां पर थी। बहनों में मैं तीसरे नंबर पर थीं। एक बड़ी और एक छोटी बहन की शादी हो गई थी। मेरे साथ शादी करने के लिए जो लड़का आया था उसने दहेज न लेने की बात कही। वह पढ़ा-लिखा था और उसकी तनख्वाह भी अच्छी थी। वह मुझसे उम्र में बारह साल बड़ा था। बहरहाल... उस वक्त सब कुछ अच्छा ही लगा था, इसलिए शादी कर ली।

हनीमून करके वापस लौटे ही थे कि पति ने अपना असली रूप दिखाना शुरू कर दिया। दहेज न लेने की बात कहने वाले पति ने एक दिन अचानक कहा कि अपने सारे गहने मुझे दे दो। मना करने पर उसने मेरा हाथ मरोड़ दिया। हाथ पर गहरे निशान पड़ गये थे। उस दौरान हम दोनों मंगलोर मां के पास गए थे। मेरे हाथ पर ऐसे दाग देखकर मेरी मां भयभीत हो गई थीं।

ऐसे बर्ताव के लिए कोई खास वजह नहीं थी। मुझे दमा था लेकिन शादी से पहले इस बारे में चर्चा करना किसी को भी उचित नहीं लगा था। पति को जब इस बारे में पता चला तो उसे लगा कि उसके साथ धोखा हुआ है। सालों तक मुझे इस बात का पछतावा होता रहा। लेकिन जिस प्रकार के अत्याचार मेरे पति ने मुझ पर किये, उससे यह साबित हो गया था कि मुझे दमा न भी होता तब भी उसका व्यवहार ऐसा ही रहनेवाला था।

पति ने जब पहली बार मुझ पर हाथ उठाया तब मुझे सदमा लगा। दूसरी बार लकड़ी के हैंगर से मारा और तीसरी बार पट्टे से मारा। मैंने तो सपने में भी ऐसी कल्पना नहीं की थी। उसके लिए मुझे पीटने का क्रम तो जैसे रोज़ का हो गया था। ऐसी स्थिति में मुझे लगता था कि सब कुछ छोड़कर कहीं चली जाऊं। लेकिन उस वक्त मेरे गर्भ में आकार ले रहा बच्चा मेरे पैर की ज़ंजीर बन गया था। पति की मार से मेरा तन और मन दोनों घायल हो गये थे। मेरी बीमारी भी बढ़ रही थी। उस वक्त मैं मां के पास चली गई और वहां मैंने एक बेटे को जन्म दिया। मेरी पीड़ा देखते हुए मां ने कहा कि तुम यहीं रहो, मैं तुम्हारी और बच्चे की ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार हूं। मैंने कहा, नहीं, मेरा पति के पास रहना ही उचित है।

मां ने समझाया शादी कोई बच्चों का खेल नहीं है, पति के साथ झगड़ा मत कर, उसका कहना मान कर रह। मैंने परिस्थिति के अनुसार सामंजस्य बैठाने की भरपूर कोशिश की लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली। काफी समय

ऐसे ही निकल गया। इस बीच मैं दो बेटियों की मां भी बन गई।

ऐसा नहीं था कि हमारे विवाहित जीवन में सुख के पल नहीं आये। खुशी के छींटे हम पर कभी-कभी गिर जाते थे। झगड़े और मारपीट के बिना गुज़ारा हुआ एकाध दिन, मित्रों के साथ गुज़ारी हुई कोई खुशनुमा शाम, साथ मिलकर बच्चों के साथ खेलना, उन्हें प्यार करना और रात के अंधेरे में बोले हुए प्रेम के दो मीठे शब्द। लेकिन ऐसे पल कभी-कभार ही आते थे; शांति का पर्दा चीरकर हिंसा; का ज्वालामुखी कब फट पड़ेगा यह कहना मुश्किल था। इसलिए आत्मीयता के उन पलों का आनंद भी मैं पूर्ण रूप से नहीं ले पाती थी।

पति को मुझ पर अत्याचार करने की आदत पड़ गई थी। बच्चों को सताने में भी उसने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। छोटी-छोटी गलतियों पर उन्हें घर से निकाल देना, उन्हें स्कूल की फीस, जूते, किताबें, नोटबुक आदि के लिए पैसा नहीं देना आदि। इस बारे में पति को मेरा कुछ भी कहना संभव नहीं था। एक बार मैंने इस बारे कुछ कहा तो उसने मुझे इतना पीटा कि मैं बेहोश हो गई।

अंततः मैंने नौकरी करने का विचार किया। एक बैंक में अर्ज़ी की, इन्टरव्यू के लिए कॉल आया, इन्टरव्यू दिया, लिखित परीक्षा में भी पास हो गई। हमारे खानदान में नौकरी करना संभव नहीं है ऐसा कहकर पति ने नियुक्ति पत्र फाड़कर फेंक दिया। उसके बाद मैंने बच्चों को घर में पढ़ाना शुरू किया। उसमे भी पति को आपत्ति थी। वह कहता, घर मेरा है, मेरा टेबल है, मेरी चीज़ों का उपयोग तुम पैसा कमाने के लिए नहीं कर सकती हो। मैंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। मैं उसके आने से पहले ही ट्यूशन खत्म कर देती थी। इसके बावजूद कभी-कभार ट्यूशन में देर हो जाती तो वह बच्चों की किताबें उठाकर फैंक देता था।

हमारे कैथलिक धर्म में तलाक लेना संभव नहीं है। मैंने अलग-अलग चर्च के पादरियों की मदद भी मांगी लेकिन कोई मदद नहीं मिली। मेरी पीड़ा और तकलीफ़ मैं ही ज़्यादा जान-समझ सकती थी। अपने लिए रास्ता भी मुझे ही ढूंढना था। खूब सोचने के बाद मैंने एक लेख लिखकर अपनी जीवन-कथा कहने का निश्चय किया। इस लेख में मैंने घर की चारदीवारी में रहने वाली स्त्रियों पर होने वाली हिंसा की बात की। इस लेख पर मुझे सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया मिली। कई लोगों ने मुझे घर छोड़ देने की सलाह दी और अपने घर में आश्रय देने का प्रस्ताव भी रखा।

इस दौरान एक संशोधन करने वाली संस्था के साथ जुड़ी हुई मेरी एक सहेली ने मुझे नौकरी का प्रस्ताव दिया। इस संस्था के लोग पति प्रताड़ित स्त्रियों के साथ काम करते थे। यहां काम करते हुए मुझे पता चला कि इस दुनिया में मेरे जैसी कितनी सारी औरतें हैं। इस काम से मेरा आत्मविश्वास भी बढ़ा। मैंने दो-तीन महिला पत्रिकाओं में दूसरे नाम से लेख भी लिखे। मुंबई में आयोजित एक गोष्ठी में 'स्त्री मुक्ति आंदोलन' विषय पर एक लेख पढ़ा। धीरे-धीरे नये रास्ते विकसित होने लगे।

लेकिन दूसरी ओर घर की स्थिति और अधिक बिगड़ रही थी। इस स्थिति में घर में काम करना मुश्किल था। दो-तीन बार घर छोड़कर चली गई, लेकिन किसी भी तरह पति काम करने नहीं देता था। मुझे सताने में उसे खुशी होती थी। मेरी डायरी, फाइलें, टाइप किये हुए कागज़, संदर्भ सामग्री जो भी उसके हाथ आता, फाड़ देता था। अब मुझे निश्चत तौर पर समझ में आ गया कि इस आदमी के साथ रहना बिलकुल संभव नहीं है। आखिरकार मैंने घर छोड़ देने का फैसला कर ही लिया। मेरी मित्रों ने मेरी मदद की। मैंने पति का घर छोड़ दिया। अब बच्चों को परेशान करने का उसे एक और हथियार मिल गया था, लेकिन बच्चे अपनी उम्र से ज़्यादा समझदार हो गए थे। "मम्मी हम ठीक हैं, तुम चिंता मत करना"— बच्चों के ये शब्द मुझे चलने की शक्ति प्रदान करते थे।

मेरे जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ था। *फोरम अगेंस्ट रेप* संस्था में मैंने पहले कुछ समय तक काम किया था। इसलिए यहां के कामकाज की जानकारी तो मुझे थी ही। लेकिन मुझे लगा कि बड़े मुद्दों के बीच छोटे प्रश्नों की उपेक्षा हो रही थी। मेरी सोच के अनुसार, एक संस्था की ज़रूरत थी जहां स्त्रियां अपना मन हल्का कर सकें। इस ज़रूरत को ध्यान में रखकर मैंने पांच अन्य स्त्रियों के साथ मिलकर सितंबर 1981 में *नारी केन्द्र* की स्थापना की। इन पांच में से एक स्त्री के घर में *नारी केन्द्र* का कामकाज शुरू हुआ। हम में से किसी के पास भी समाज-सेवा की डिग्री या अनुभव नहीं था। हां... काम करने का उत्साह ज़रूर था। धीरे-धीरे मदद करनेवाली और मदद पानेवाली स्त्रियों की संख्या बढ़ने लगीं।

उसी दौरान मुझे लगा कि मुझे अधिक शिक्षा अर्जित करने की ज़रूरत है। स्त्रियों की समस्या को लेकर जब मैं पुलिस स्टेशन या कोर्ट जाती तो मेरा अज्ञान मेरे सामने बाधा बन जाता था। मैंने एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय में पढ़ना शुरू किया। बी.ए. में मुझे डिस्टीक्शन के साथ फर्स्ट क्लास मिली। मेरा मनोबल निश्चत तौर पर बढ़ा।

कष्ट तो जीवन में बहुत झेला, लेकिन मेरी मुक्ति का मार्ग भी मुझे ही ढूंढना था और उसके लिए प्रयत्न भी मुझे ही करने थे, जो मैंने किये। इस तरह अच्छे-बुरे दिन गुज़र रहे थे। इसी समय मुझे कनाडा में एक महिला कॉन्फ्रेंस में जाने का मौका मिला। जब मैं कनाडा से वापस आई तब मैंने देखा कि मेरी बेटियों की दशा बहुत ही खराब थी। मेरा पति उन्हें अच्छी तरह से नहीं रखता था और न ही उन्हें मेरे साथ रहने देता था।

इसी दौरान कानूनी दांव-पेंच शुरू हुआ। मेरे पति ने पूरी कोशिश की कि बेटियां उनके साथ रहें पर उच्च न्यायालय ने लड़कियां मेरे हवाले कर दीं। आज हम सभी सुख से रहते हैं।

किसी भी लड़ाई में कायदे-कानून की जानकारी ज़रूरी होती है। *नारी केन्द्र* में आने वाली स्त्रियों को कानूनी जानकारी की ज़रूरत होती थी। इसलिए मैंने लॉ कॉलेज में दाखिला लिया। चालीस साल की उम्र में मुझे एल.एल.बी. की डिग्री मिली और मैंने वकालत करने की शुरूआत की।

मजलिस की दूसरी दो साथियों के साथ मैं हर महीने कम से कम दस-पंद्रह स्त्रियों की ओर से फैमिली कोर्ट में मुकदमा दायर करती हूं। इसमें से अधिकांश मामले तलाक या गुज़र-बसर के होते हैं। हम कार्यकर्ताओं के लिए कानूनी साक्षरता कक्षाएं भी चलाते हैं।

आज तिरपन साल की उम्र में ज़िंदगी से मुझे कोई शिकायत नहीं है। मेरे मन में कड़वाहट भी नहीं रही है। मैं खुश हूं। स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ने वाली एक वकील के तौर पर मुझे प्रतिष्ठा भी मिली है। पति-परिवार से पीड़ित स्त्रियों के लिए लड़ना, उन्हें उनके खोये हुए अधिकार वापस दिलवाना, उनकी मदद करना, और उन्हें आश्रय देना, यही मेरे जीवन का मूल उद्देश्य है।

1991 में फ्लेविया को नीरजा भनोत पुरस्कार से भी नवाजा गया था।

दिव्या जैन *'अंतरंग संगिनी' पत्रिका की सम्पादक हैं।*